जुलाई १९९८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

अनाथपिंडिक

अनर्घ दान

बृहत भिक्षुसंघ सहित भगवान बुद्ध प्रातःकालीन भोजनदान ग्रहण करने के लिए श्रेष्ठी के घर पधारने वाले हैं।

अपने बहनोई राजगृह श्रेष्ठि के अतिथि-कक्ष में लेटा हुआ अनाथपिंडिक इस भावी महापुण्य की कल्पना से पुलकित रोमांचित हो रहा था। अपने बहनोई द्वारा बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ के लिए साठ विहारों की दान-कथा उसे भाव-विभोर कर रही थी। क्या मैं भी श्रावस्ती में ऐसी तपोभूमि का दान दे सकने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूंगा। क्या भगवान इसे स्वीकार करेंगे! श्रावस्ती महाकोसल राज्य की राजधानी है। जम्बू द्वीप (भारत) के मध्यमंडल प्रदेश की सबसे विशाल और जनाकीर्ण नगरी है। यदि वहां कोई तपोभूमि बने और भगवान पधारें तो हजारों भिक्षु तो उस विहार में तपेंगे ही, साथ-साथ उस महानगरी के लाखों दुखियारे गृहस्थों को भी ऐसी कल्याणी विपश्यना विद्या प्राप्त हो सकेगी, जिससे उनका भी लोक सुधरेगा, परलोक सुधरेगा और वे भी भवसंसरण से सहज मुक्त हो सकने का मार्ग पा सकेंगे। सभी तो दुखियारे हैं। निर्धन तो निर्धन, जो मेरे जैसे धनी हैं वे भी कितने दुखियारे हैं। सदा आत्मभाव में डूबे रहते हैं, आसक्त रहते हैं और इस कारण मन में राग या द्वेष जगाते रहते हैं। परिणामतः व्याकुल होते रहते हैं। जैसे मैं किया करता था वैसे ही वे बेचारे दुखियारे लोग भी सांसारिक दुःखों से, भले कुछ देर के लिए ही सही, छुटकारा पाने के लिए इस या उस धर्माचार्य के पास जाते रहते हैं। अनेक धर्माचार्य तो ऐसे हैं जो स्वयं भटके हुए हैं। अतः इन आर्त गृहस्थों को यह या वह कर्मकांड पूरा कर लेने का उपदेश देते हैं और इसके द्वारा भवमुक्त होने का आश्वासन देते हैं। बेचारे अनेक गृहस्थ जीवनभर इन थोथे कर्मकांडों में उलझे रह जाते हैं। जब इस जीवन में उन्हें कोई लाभ नहीं मिलता तो इस बात का मिथ्या आश्वासन देते हैं कि मरने के बाद अवश्य स्वर्ग अपवर्ग प्राप्त होगा। कई लोग इस आश्वासन के भरोसे अपना अनमोल मानवी जीवन व्यर्थ बिता देते हैं।

कोई-कोई समझदार आचार्य ऐसे भी हैं जो राग व द्वेषजन्य अनेकानेक विकारों से चित्त के मुक्त होने पर ही भवमुक्ति प्राप्त होगी, इस सच्चाई का उपदेश देते हैं। चिंतनशील लोगों को उनके ये धर्मोपदेश अच्छे लगते हैं। उनमें से जो मात्र जिज्ञासु हैं वे तो अपनी जिज्ञासा की पूर्ति से संतुष्ट हो जाते हैं। उन्हें ऐसी निर्मल धर्मवाणी सुन कर प्रसन्नता होती है। परंतु जो मुमुक्षु हैं वे जब विकार-विमुक्त होने के लिए कोई विधि पूछते हैं तो उन्हें कहा जाता है कि किसी अदृश्य देव या ब्रह्मा की अनुकम्पा पर आश्रित रहना होगा। उनकी कृपा से ही विकार-विमुक्त हो सकोगे। अपने बल पर नहीं। परंतु कुछ समझदार लोगों को यह समझते देर नहीं लगती कि अदृश्य देव और ब्रह्मा यदि अभी इसी जीवन में हमें विकार-विमुक्त नहीं कर सकते तो मृत्यु के बाद कैसे करेंगे? वे खूब समझते हैं कि विकार-विमुक्त होने के लिए स्वयं परिश्रम करना होगा, पराक्रम पुरुषार्थ करना होगा। कोई बाह्य शक्ति कैसे हमें विकार-विमुक्त कर सकेगी! ऐसी शंका करने पर कुछएक आचार्य उन्हें परिश्रम करने का उपदेश देते हैं और वह यह कि कठोर से कठोर देह-दंडन का उपक्रम करो। अनेक लोग उसी में उलझे रह जाते हैं, क्योंकि मन को सुधारने का तो कोई मार्ग प्राप्त होता नहीं।

इस प्रकार अनाथपिंडिक का मनोमंथन चलता रहा। उसे याद आया। कल प्रत्यूष काल के पूर्व वह पहली बार भगवान तथागत से मिला था। उनके मुख से शील, समाधि और प्रज्ञा के शुद्ध धर्म की व्याख्या सुनी थी जिसे सुनते-सुनते उसने अपने भीतर उस शिक्षा के प्रयोगात्मक पक्ष का अभ्यास किया था। उससे जो लाभ हुआ, उसे याद करके वह बार-बार रोमांचित हो रहा था। अभ्यास करके यहीं इसी जीवन में शनैः शनैः विकार-विमुक्त होने की यह तत्काल फलदायिनी विद्या लोगों को प्राप्त होगी तो वे अनेक जंजालों में से निकल कर धर्म के शुद्ध मार्ग पर चलने का अभ्यास करने लगेंगे। भगवान यदि मुझे श्रावस्ती में एक विहार बनाने की अनुमति दे दें तो उस विहार में चित्त एकाग्रता और चित्त विशुद्धि के लिए केवल भिक्षुओं को ही उचित सुख-सुविधा नहीं मिलेगी, बल्कि अनेक मुमुक्षु गृहस्थों को भी इसका बहुत बड़ा लाभ होगा। अपनी बहन और बहनोई के मुख से उसने कल ही सुना कि यहां राजगृह में उनके द्वारा दान दिए गये विहारों में अनेक गृहस्थ भी इस विकार-विशोधनी साधना से लाभान्वित हो रहे हैं। इसी प्रकार श्रावस्ती का विहार भी गृहस्थों के कल्याण का कारण बनेगा। इस चिंतन में निमग्न अनाथपिंडिक बार-बार धर्म-विह्वल होता रहा। उसका मन-मानस प्रीति-प्रमोद से उर्मिल-उर्मिल होता रहा। प्रत्यूष के बहुत पूर्व ही वह उठ बैठा। सारी रात नहीं सो पाने पर भी उसके तन और मन में कहीं कोई थकावट नहीं थी, आलस्य नहीं था, तनाव नहीं था। उसका हृदय गदगद हो रहा था। शरीर बहुत हल्का था।

उसने देखा कि उसके बहनोई के परिवार के लोगों ने मिल कर भगवान और भिक्षु संघ के लिए अनेक सुस्वादु व्यंजनों सहित भोजन तैयार कर लिया है। पौ फटते ही उसने भगवान को सूचना भिजवाई – भोजन का समय हो गया है। कृपया भिक्षुसंघ सहित पधारें। सूर्योदय होते-होते भगवान सुआच्छादित होकर भिक्षापात्र हाथ में लिए हुए कतारबद्ध भिक्षुसंघ सहित श्रेष्ठि के घर पहुँचे। अनाथपिंडिक ने श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए उनका स्वागत किया। उनके पांव धोकर बिछे हुए आसनों पर बैठाया और अपने हाथ से उत्तम-उत्तम स्वादिष्ट भोजन परोसा। भगवान द्वारा भोजन-पात्र से हाथ खींच लेने पर अनाथपिंडिक उनके सामने हाथ जोड़ कर बैठ गया। उसने भावविभोर होकर भगवान से प्रार्थना की –"भगवान भिक्षुसंघ सहित श्रावस्ती पधारें और वहां वर्षावास करें।"

भगवान ने कहा, "हे गृहपति! तथागत शून्यागार में रहना

पसंद करते हैं।"

इस प्रकार उन्होंने वहां विहार बनाने की अनुमति दे दी। अनाथपिंडिक का हृदय आनंद से भर उठा। उसने कहा "समझ गया भगवान! ऐसा ही होगा भगवान!"

भोजनोपरांत भगवान के लौट जाने पर अनाथपिंडिक ने अपनी व्यावसायिक यात्रा से संबंधित कार्यों को शीघ्रातिशीघ्र पूरा किया और अत्यंत प्रसन्नचित्त से श्रावस्ती की ओर लौट चला। इस बीच उसने भगवान के प्रमुख शिष्य आदरणीय भिक्षु सारिपुत्र से विहार निर्माण के बारे में कुछएक आवश्यक परामर्श भी प्राप्त कर लिये।

राजगृह से श्रावस्ती की दूरी पैंतालीस योजन थी। उन दिनों अधिकांश यात्री एक दिन में एक योजन की ही यात्रा करते थे। अतः एक-एक योजन की दूरी पर एक बड़ा गांव, या निगम बसा होता था जो कि स्थानीय व्यापार का केंद्र भी होता था। यात्री यहीं रात बसेरा करके दूसरे दिन आगे की यात्रा पर निकल पड़ते थे।

अनाथपिंडिक उन दिनों के प्रसिद्ध व्यापारियों में से एक था। उसका व्यवसाय दूर-दूर तक देश-विदेश में तो फैला हुआ था ही, राजगृह से श्रावस्ती तक के यातायात-मार्ग पर इन मंडियों के व्यापारियों के साथ भी उसके घनिष्ठ व्यावसायिक संबंध थे जो अत्यंत मधुर और मैत्रीपूर्ण थे। इन व्यापारियों पर उसका इस कारण भी गहरा प्रभाव था कि वह अपने व्यापार में बहुत प्रामाणिक था। कहीं किसी के साथ धोखा-धड़ी नहीं करता था। इसलिए सभी व्यापारी सदा उसके सत्परामर्श को सम्मान और विश्वास के साथ स्वीकार करते थे।

इस मार्ग के पड़ाव की प्रत्येक मंडी के व्यापारियों को उसने बताया कि संसार में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं। वे इस समय राजगृह में विहार कर रहे हैं। मैं उनसे मिला हूं। उनके उपदेशों से अत्यंत लाभान्वित हुआ हूं। मैंने उन्हें बृहत भिक्षुसंघ सहित श्रावस्ती आने का आमंत्रण दिया है जिसे उन्होंने कृपापूर्वक स्वीकार कर लिया है। वे इसी मार्ग से श्रावस्ती आयेंगे। तब एक रात आप के यहां ठहरेंगे। आप उन सब के रात्रि-निवास का तथा दूसरे दिन प्रातःकाल आगे की यात्रा के लिए प्रस्थान करने के पूर्व भोजनदान का समुचित प्रबंध करें और इस असीम पुण्य अर्जन के शुभ अवसर का पूरा लाभ उठायें। इस सूचना और प्रस्ताव से सभी प्रसन्न हुए। उन्होंने अनाथपिंडिक का बड़ा उपकार माना। जिस गांव के लोग संपन्न नहीं थे और इस कारण मनोनुकूल व्यवस्था कर सकने योग्य नहीं थे उन्हें अनाथपिंडिक ने आवश्यक आर्थिक सहायता दी ताकि किसी भी कारण किसी भी पड़ाव पर भगवान और भिक्षुसंघ को कष्ट न उठाना पड़े।

***

यों सारे रास्ते भगवान की यात्रा का समुचित प्रबंध करवाते हुए वह श्रावस्ती पहुँचा। उसने वहां शीघ्र ही तपोभूमि के अनुकूल विहार की खोज आरंभ कर दी। राजगृह रहते हुए उसने सारिपुत्र से खूब समझ लिया था कि विहार कैसा बने? कहां बने? उसमें क्या-क्या सुविधाएं हों? वह ऐसे ही किसी उपयुक्त स्थान की खोज में लग गया जो कि –

* नगर से न अति दूर हो, न अति समीप।
* जहां गमनागमन की सुविधा हो,
* जहां लाभ लेने वाले लोगों के लिए आ सकने की सुगमता हो।
* जहां दिन में बहुत भीड़-भाड़ न हो,
* जहां रात में बहुत हल्ला-गुल्ला न हो,
* जहां निर्जन वातावरण हो,
* जहां राह पर लोगों का बहुत आवागमन न हो,
* जहां ध्यान की पूर्ण अनुकूलता हो।

खोजते-खोजते उसे जेत राजकुमार का उद्यान दीख पड़ा जो इस निमित्त सर्वथा अनुकूल था। उद्यान खरीदने के लिए वह जेत राजकुमार के पास गया। राजकुमार अपना उद्यान किसी कीमत पर भी नहीं बेचना चाहता था। उसने टालने के लिए उसकी कीमत **कोटि सन्थार** बता दी।

अनाथपिंडिक ने उसकी जबान पकड़ ली और तत्क्षण सौदा पक्का कर लिया। बिना मन के जेत राजकुमार को अपना उद्यान बेचना पड़ा। वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि उसके उद्यान की इतनी कीमत देने के लिए कोई तैयार हो जायेगा? **कोटि सन्थार** का अर्थ था – करोड़ों का बिछावन। उन दिनों की बोलचाल की भाषा में इसका अर्थ था, उद्यान की सारी भूमि पर एक किनारे से दूसरे किनारे तक सोने के सिक्कों की बिछायत करनी, यानी उसे सोने के सिक्कों से ढकना। श्रेष्ठि अनाथपिंडिक ने यही किया। वह गाड़ियों में सोना भर-भर कर ले आया और उद्यान के एक छोर से दूसरे छोर तक बिछवाने लगा।

जिस स्थान पर भगवान विहार करेंगे और उनके सान्निध्य में अनेक साधक साधना करेंगे, उस तपोभूमि की कोई कीमत नहीं आंकी जा सकती। अनाथपिंडिक को लगा, उस भूमि के लिए यह कीमत भी थोड़ी है। जो स्वयं धर्म-रस चख लेता है, उसके मन में यह भाव प्रबल हो ही उठता है कि ऐसा धर्म-रस अनेक लोग चखें। यहां भगवान स्वयं पधारेंगे, तब अनेक व्यक्तियों को यह सुविधा मिलनी सहज हो जायेगी। वह अत्यंत प्रसन्न चित्त से जेतवन को सोने की मोहरों से ढकवाये जा रहा था। उसका मन इसी चिंतन-मनन में लगा हुआ बांसों उछल रहा था कि उसकी संपत्ति का कैसा सदुपयोग होने जा रहा है!

राजकुमार यह सब देख कर अवाक रह गया। उसने सोचा, अवश्य इस भूमि पर कोई अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य होने जा रहा है, अन्यथा यह सांसारिक नगर-सेठ इसके लिए इतना धन कदापि व्यय नहीं करता। जब उसने जाना कि उसका यह उद्यान किस लिए खरीदा जा रहा है तो वह भावविभोर हो उठा। तब तक बाकी सारी जमीन पर स्वर्ण मुद्राएं बिछायी जा चुकी थीं। केवल एक कोना बचा था, अनाथपिंडिक ने इसे ढकने के लिए गाड़ियों से और सोना लाने का आदेश दिया, परंतु जेत राजकुमार ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा –बस कर, श्रेष्ठी, इस खाली (जमीन) को मत ढक। इस पर स्वर्ण मत बिछा। मुझे अवसर दे जिससे कि यह मेरा दान हो।

अनाथपिंडिक ने उसकी बात यह सोच कर मान ली कि राजकुमार नगर का प्रसिद्ध व्यक्ति है। ऐसे व्यक्ति का इस कार्य में सहयोगी होना अच्छा ही होगा। वैसे भी मेरे इस अपरिमित पुण्य कार्य में कोई भागीदार बनना चाहे तो मैं बाधक क्यों बनूं!

जो भूमि राजकुमार के दान के हिस्से में आयी वह मार्ग के समीप थी, अतः राजकुमार ने उस स्थान पर विहार का मुख्य द्वार बनवाया, एक विशाल ड्योढ़ी बनवायी।

अनाथपिंडिक ने शेष भूमि पर विहार बनवाये, प्रवेण बनवाये, कोठे बनवाये, सभागृह बनवाये, पानी गर्म करने के लिए अग्निशालाएं बनवायीं, भंडारघर बनवाये, पेशाब-पाखाने के स्थान बनवाये, खुले चंक्रमण बनवाये, चंक्रमणशालाएं बनवायीं, पानीघर बनवाये, प्याऊ बनवाये, स्नानागार बनवाये, स्नानशालाएं बनवायीं, पुष्करणियां बनवायीं और मंडप बनवाये, जिससे कि हजारों भिक्षु और साधक भगवान के सान्निध्य में सुविधापूर्वक रह कर ध्यान कर सकें ।अनाथपिंडिक ने अठारह करोड़ के मूल्य की स्वर्णमुद्राएं बिछवा कर जिस धरती को खरीदा, उस पर और अठारह करोड़ खर्च करके आवश्यक निर्माण कराए,तथा उस विशाल तपोविहार के रख-रखाव के लिए अठारह करोड़ का दान अलग से निश्चित कर दिया। इस प्रकार उसने ५४ करोड़ का दान दिया। भगवान के इस परम श्रद्धालु, गृहस्थ शिष्य ने दान के इतिहास में सदा के लिए एक अतुलनीय समुज्ज्वल कीर्तिमान स्थापित किया।

अनाथपिंडिक का यह महर्घ दान सचमुच अनुपम था, असीम पुण्यफलदायी था। अपनी कल्याणकारिणीधर्मचारिका के ४५ वर्षों में से २५ वर्षों का वर्षावास भगवान बुद्ध ने श्रावस्ती में किया।इस विहार में दस हजार साधकों के रहने और ध्यान कर सकने की सुख-सुविधाएं उपलब्ध थीं। भिक्षुओं के अतिरिक्त लाखों की संख्या में नगर-निवासी गृहस्थों ने यहां आकर भगवान की अमृतवाणी का रस पान किया।उनके बताए आष्टांगिक मार्ग पर चले। शील का पालन करते हुए समाधि का अभ्यास किया और अपनी प्रज्ञा जागृत कर उनमें से अनेक स्रोतापन्न अवस्था को प्राप्त हुए और इस प्रकार अपनी भवमुक्ति निश्चित कर ली। यों अनाथपिंडिक का यह महर्घ दान पूर्णतया सफलीभूत हुआ।

धर्म की स्वस्थ परंपरा में कोई व्यक्ति किसी विहार का दान देकर उस पर अपना नाम नहीं लिखवाता, क्योंकि वह अपनी प्रसिद्धि के लिए दान नहीं देता। महज लोक-कल्याणके उद्देश्य से दान देता है। लेकिन फिर भी इतना बड़ा दान देने के कारण प्रसिद्धि अपने आप हो जाती है। भगवान के जीवन काल में यहां अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएं घटीं। यहीं उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण उपदेश दिए। अनेकों को भवमुक्त होने की विपश्यना विद्या सिखायी। इनका वर्णन करते हुए पुरातन पालि साहित्य में अनाथपिंडिक का नाम इस प्रकार सैंकड़ो बार आया है –

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति, जेतवने अनाथपिंडिकस्स आरामे...

और यों २६०० वर्ष पूर्व की यह असाधारण घटना चिरकाल तक लोक विश्रुत हुई। आज भी सद्धर्म की सेवा में जुड़े हुए साधकों के लिए अपरिमित प्रेरणा का कारण बनी हुई है। महादानी अनाथपिंडिक का तो परम मंगल, परम कल्याण हुआ ही, उससे प्रेरणा पाकर न जाने अन्य कितनों का मंगल कल्याण हुआ, आज भी हो रहा है और भविष्य में भी होता ही रहेगा। सचमुच समय पक चुका है। सद्धर्म पुनः जागेगा और लोकमंगल होता ही रहेगा, लोक कल्याण होता ही रहेगा।

कल्याणमित्र,

सत्यनारायण गोयन्का.